

अध्यात्म ज्ञान एवं चिन्तन संस्था

(SOCIETY FOR ADHYATMA STUDIES)

17, सिविल लाइन्स, कमिश्नर ऑफिस के सामने, मुरादाबाद – 244001
मो0 9412241221

ब्रह्म ज्ञान विचार गोष्ठी – 45

18.12.2011

“श्रीमद् भगवद् गीता”
षष्ठम् अध्याय
“आत्मसंयम योग”

निवेदक

डॉ0 यू0 के0 शाह
शाह नर्सिंग होम,
सिविल लाइन्स, मुरादाबाद
फोन नं0 9359716440

रविन्द्र नाथ कत्याल
अमर बसेरा,
सिविल लाइन्स, मुरादाबाद
फोन नं0 9837041945

सुधीर गुप्ता, एडवोकेट
17, सिविल लाइन्स,
मुरादाबाद
फोन नं0 9412241221

श्रीमद् भगवद् गीता

अध्याय – 6

“आत्मसंयम योग”

इस अध्याय में 1 से 4 तक निष्काम कर्मयोग का वर्णन है,
5 से 10 तक आत्म उद्धार के लिये प्रेरणा और साधक के लक्षण हैं,
11 से 32 तक ध्यान योग का वर्णन है,
33 से 36 तक मन के निग्रह का वर्णन है,
37 से 47 तक योगभ्रष्ट की गति और ध्यान योगी की महिमा का वर्णन है।

श्रीभगवान उवाच –

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निः न चाक्रियः॥ 1॥

श्रीभगवान ने कहा—

जो व्यक्ति कर्म के फल को न चाहता हुआ करने योग्य कर्म करता है वह संन्यासी है और योगी है। और केवल अग्नि को त्यागने वाला या केवल क्रियाओं का त्यागने वाला संन्यासी योगी नहीं है।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।

न हि असंन्यस्त संकल्पः योगी भवति कश्चन॥ 2॥

हे अर्जुन! जिसे संन्यास कहते हैं उसे ही तुम योग जानो, लेकिन जिसने अपने संकल्पों से संन्यास नहीं लिया है अर्थात् उनका त्याग नहीं किया है वह योगी नहीं होता।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥ 3॥

योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मुनि के लिये निष्काम भाव से कर्म करना ही साधन कहा गया है और योगारूढ़ हो जाने पर उसके लिये सर्व संकल्पों का अभाव ही संन्यास का साधन कहा गया है।

यदा हि न इन्द्रियार्थेषु न कर्मसु अनुषज्जते।

सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढः तदोच्यते॥ 4॥

जब व्यक्ति न तो इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होता है और न कर्मों में ही आसक्त होता है तब उस सर्वसंकल्पों के त्यागी व्यक्ति को योगारूढ़ कहा जाता है।

उद्धरेत् आत्मना आत्मानं न आत्मानम् अवसादयेत् ।
आत्मैव हि आत्मनो बन्धुः आत्मैव रिपुः आत्मनः ॥ 5 ॥

मनुष्य को चाहिये अपने द्वारा ही अपना उद्धार करे और अपने आत्मा को अधोगति में न पहुंचावे क्योंकि यह जीवात्मा स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

बन्धुरात्मा आत्मनः तस्य येनात्मा एव आत्मना जितः ।
अनात्मनः तु शत्रुत्वे वर्तेत आत्मैव शत्रुवत् ॥ 6 ॥

जिसने अपने मन और इन्द्रियों सहित शरीर पर विजय प्राप्त कर ली है उसका आत्मा तो स्वयं का मित्र है परन्तु जिसके द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है वह स्वयं का शत्रु सदृश्य ही है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ 7 ॥

सर्दी-गर्मी, सुख-दुख तथा मान-अपमान में भी जो शान्त है ऐसे आत्मजित व्यक्ति में परमात्मा स्थित है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इति उच्यते योगी समलोष्टाश्म कान्चनः ॥ 8 ॥

जो योगी ज्ञान (प्राप्त) और विज्ञान (अनुभव) से तृप्त है तथा जिसकी स्थिति विकार रहित है तथा जो जितेन्द्रिय है, जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सोना एक समान है ऐसा योगी परमात्मा से युक्त कहा जाता है।

सुहृन्मित्रारि उदासीन मध्यस्थ द्वेष्य बन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिः विशिष्यते ॥ 9 ॥

जिस योगी की दृष्टि में सुहृद (सबके कल्याण की कामना वाला), मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी, बन्धु, साधु, पापी एक समान हैं वह योगी श्रेष्ठ है।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः ॥ 10 ॥

जिसने मन और इन्द्रियों सहित शरीर को जीत लिया है, जो इच्छा रहित है, जो संग्रह रहित है ऐसे योगी को अकेले ही एकांत स्थान में रह कर निरन्तर आत्मा में ध्यान लगाना चाहिये।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनम् आत्मनः ।
न अतिउच्छ्रितं न अतिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम् ॥ 11 ॥

ध्यान के लिये शुद्ध भूमि में कुशा पर मृगछाला और उस पर वस्त्र का आसन होना चाहिये। वह आसन न बहुत ऊँचा हो न ही नीचा हो।

तत्र एकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्य आसने युञ्ज्यात् योगम् आत्मविशुद्धये ॥ 12 ॥

उस आसन पर बैठकर, मन को एकाग्र करके, चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करके अंतःकरण की शुद्धि के लिये योग का अभ्यास करें।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन् अचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशः च अनवलोकयन् ॥ 13 ॥

आसन पर शरीर, सिर और गर्दन को समान करके अचल (स्थिर) होकर बैठे और अपने नासिका के अग्र भाग पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करे अन्य दिशाओं में न देखे।

प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत् मत्परः ॥ 14 ॥

शान्त अन्तःकरण वाला होकर, भय रहित व ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित रहता हुआ, सावधान होकर मन को वश में करके, मुझमें चित्त लगाकर, मेरा ध्यान करे।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थाम् अधिगच्छति ॥ 15 ॥

इस प्रकार आत्मा को सदा परमेश्वर में स्थित करने वाला संयमित मन वाला योगी मुझमें स्थित निर्वाण अर्थात् परम शान्ति को प्राप्त करता है।

नाति अश्नतः तु योगोऽस्ति न चैकान्तम् अनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ 16 ॥

हे अर्जुन! यह योग न तो बहुत खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले का, तथा न बहुत सोने वाले का और न बहुत जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ 17 ॥

दुखों का नाश करने वाला यह योग तो युक्त आहार—विहार करने वाले का तथा कर्मों में युक्त चेष्टा करने वाले का तथा युक्त सोने और जागने वाले का ही सिद्ध होता है ।

यदा विनियतं चित्तम् आत्मनि एव अवतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इति उच्यते तदा ॥ 18 ॥

वश में किया हुआ चित्त जब आत्मा में स्थित होता है तब सम्पूर्ण कामनाओं से रहित निःस्पृह व्यक्ति योग युक्त कहा जाता है ।

यथा दीपो निवातस्थो नंगते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ 19 ॥

जिस प्रकार वायु रहित स्थान में दीपक चलायमान नहीं होता वैसी ही उपमा आत्मा के ध्यान में लगे हुये योगी के चित्त की कही गयी है ।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैव आत्मना आत्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति ॥ 20 ॥

जब योग के अभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त शान्त हो जाता है और जब परमेश्वर के ध्यान से शुद्ध हुई बुद्धि द्वारा आत्मा को देखता है तब वह आत्मा में ही सन्तुष्ट होता है, अर्थात् आत्मा में ही आनन्द प्राप्त करता है ।

सुखम् आत्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यम् अतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितः चलति तत्त्वतः ॥ 21 ॥

इन्द्रियों से परे केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है उसको जब अनुभव करता है और उसमें स्थित रहता है वह योगी परम तत्त्व से कभी विचलित नहीं होता ।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ 22 ॥

परमेश्वर की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त करके उससे अधिक दूसरा कोई भी लाभ नहीं मानता है उस भगवत् प्राप्ति रूप अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुख से भी चलायमान नहीं होता ।

तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगः अनिर्विण्णचेतसा ॥ 23 ॥

जो दुख के संयोग से रहित है और जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिये। वह योग बिना उकताये हुये तत्पर चित्त से निश्चय पूर्वक करना ही कर्तव्य है।

संकल्पप्रभवान् कामान् त्यक्त्वा सर्वान् अशेषतः ।
मनसा एव इन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ 24 ॥

मनुष्य को चाहिये कि संकल्प से उत्पन्न होने वाली सभी कामनाओं को, वासना और आसक्ति सहित त्यागकर, मन के द्वारा इन्द्रियों को सब ओर से अच्छी प्रकार से वश में करे।

शनैः शनैः उपरमेत् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ 25 ॥

धीरे—धीरे क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरामता (विषयों से ऊपर उठना) को प्राप्त करे तथा धैर्य युक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवाय और कुछ भी चिन्तन न करे।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलम् अस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्य एतत् आत्मन्येव वशं नयेत् ॥ 26 ॥

यह चंचल और अस्थिर मन जिस—जिस कारण से विषयों या सांसारिक पदार्थों में विचरता है उस—उस से उसे रोक कर बार—बार परमात्मा में ही लगायें।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतम् अकल्मषम् ॥ 27 ॥

जिसका मन अच्छी प्रकार शान्त है, जो पाप से रहित है, जिसका रजोगुण शान्त हो गया है ऐसे उस सच्चिदानन्द ब्रह्म के साथ एकीभाव हुये योगी को उत्तम सुख प्राप्त होता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शम् अत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ 28 ॥

इस प्रकार निरन्तर स्वयं को परमात्मा में लगाता हुआ पाप रहित योगी सुख पूर्वक ब्रह्म की प्राप्ति रूप अनन्त आनन्द का अनुभव करता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ 29 ॥

योग युक्त अन्तःकरण वाला और सर्वत्र समदर्शी योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में व्याप्त देखता है और सभी भूतों में एक ही आत्मा को देखता है अर्थात् सारे भूत आत्मा हैं और सभी भूतों में एक ही आत्मा है, इस प्रकार देखता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ 30 ॥

जो मुझे सर्वत्र देखता है और सब में मुझको देखता है उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वम् आस्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ 31 ॥

जो योगी इस प्रकार सम्पूर्ण भूतों में स्थित मुझे देखता है वह सब प्रकार कार्य करते हुये भी मुझमें वर्तमान रहता है।

आत्मा उपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ 32 ॥

हे अर्जुन! जो योगी अपने आत्मा जैसा ही सर्वत्र सब भूतों में समान आत्मा देखता है और सुख व दुख को भी समान देखता है वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

अर्जुन उवाच—
योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात् स्थितिं स्थिराम् ॥ 33 ॥

अर्जुन ने कहा—
हे मधुसूदन! यह जो ध्यान योग आपने समत्व भाव से कहा है यह स्थिति मुझे चिरस्थायी प्रतीत नहीं होती है क्योंकि मन बहुत चंचल होने के कारण बहुत समय तक एक ही स्थिति में नहीं रह पाता है।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ 34 ॥

हे कृष्ण! मन बड़ा चंचल है और मथने वाला है, बलवान है और दृढ़ है। इसलिये उसको वश में करना उसी प्रकार कठिन है जैसे वायु को बांध पाना।

श्रीभगवान उवाच—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ 35 ॥

श्रीभगवान ने कहा—

हे महाबाहु! निःसन्देह मन अति चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु हे कुन्तीपुत्र अभ्यास एवं वैराग्य से यह वश में होता है।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुम् उपायतः ॥ 36 ॥

जिसका मन असंयत है ऐसे व्यक्ति द्वारा योग को प्राप्त करना कठिन है लेकिन मन को वश में रखने वाले प्रयत्नशील व्यक्ति द्वारा साधना करने से योग प्राप्त होना संभव है। यह मेरा मत है।

अर्जुन उवाच—

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ 37 ॥

अर्जुन ने कहा—

हे कृष्ण! जिसका मन योग से विचलित हो गया है ऐसा शिथिल यत्न वाला श्रद्धायुक्त व्यक्ति योग की सिद्धि को न प्राप्त होकर किस गति को प्राप्त होता है?

कच्चिन्न उभयविभ्रष्टः छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ 38 ॥

हे महाबाहु! ब्रह्म के मार्ग से विमोहित हुआ अस्थित (आश्रय रहित) व्यक्ति छिन्न-भिन्न बादल की भांति दोनो ओर से (भगवत् प्राप्ति एवं सांसारिक भोगों से) भ्रष्ट होकर नष्ट तो नहीं हो जाएगा?

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुम् अर्हसि अशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्य अस्य छेत्ता न हि उपपद्यते ॥ 39 ॥

हे कृष्ण! मेरे इस संशय को सम्पूर्ण रूप से छेदन करने के लिये आप ही योग्य हैं क्योंकि आपके सिवाय कोई दूसरा इस संशय का छेदन करने वाला मिलना संभव नहीं है।

श्रीभगवान उवाच—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।

न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति ॥ 40 ॥

श्रीभगवान ने कहा—

हे पार्थ! उस व्यक्ति का न तो यह लोक और न ही परलोक नष्ट होता है क्योंकि हे तात! कोई भी शुभ कर्म करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं होता ।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः ।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ 41 ॥

वह योग भ्रष्ट व्यक्ति पुण्यवान् व्यक्तियों के लोकों (स्वर्ग आदि उत्तम लोकों) को प्राप्त होकर तथा उनमें बहुत वर्षों तक वास करके शुद्ध आचरण वाले व्यक्तियों के घर में पुनः जन्म लेता है ।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ 42 ॥

अथवा उन लोकों में न जाकर ज्ञानवान् योगियों के ही कुल में जन्म लेता है । निसन्देह इस प्रकार का जन्म संसार में अति दुर्लभ है ।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ 43 ॥

और हे कुरुनन्दन! वहां उस पहले शरीर में प्राप्त किये गये ज्ञान से संपन्न होकर समत्व बुद्धि योग के संस्कारों को प्राप्त करता है और उसके प्रभाव से फिर ब्रह्म प्राप्ति की सिद्धि के लिये प्रयत्न करता है ।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्यियते ह्यवशोऽपि सः ।

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्म अतिवर्तते ॥ 44 ॥

वह योगभ्रष्ट व्यक्ति विषयों के वश में हुआ भी पूर्व जन्म के अभ्यास के कारण ही निःसन्देह भगवान की ओर आकर्षित होता है, क्योंकि योग का जिज्ञासु व्यक्ति भी वेद में कहे हुये सकाम कर्मों के फल से ऊपर हो जाता है ।

प्रयत्नात् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्म संसिद्धः ततो याति परां गतिम् ॥ 45 ॥

प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला योगी सम्पूर्ण पापो से शुद्ध होकर अनेक जन्मों में की गई अन्तःकरण की शुद्धिरूप सिद्धि को प्राप्त करके साधना के प्रभाव से परम गति को प्राप्त होता है ।

तपस्विभ्यः अधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यः च अधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ 46 ॥

योगी तपस्वियों से भी श्रेष्ठ है और ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है तथा सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है, अतः हे अर्जुन! तू योगी हो ।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ 47 ॥

सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान योगी अपनी अन्तरात्मा को मुझमें लगाये हुये मुझको निरन्तर भजता है वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ और मान्य है ।

॥ इति षष्ठोऽध्याय ॥